International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

पूँजीवाद की भेंट चढ़ते प्राथमिक शिक्षा को बचाने हेतु ज़रूरी है एकसमान शिक्षा प्रणाली

अशोक कुमार सखवार
पी-एच.डी. (हिंदी) शोधार्थी,
हिंदी विभाग, साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय,
बारला परिसर, बारला, जिला रायसेन, मध्य प्रदेश
मोबाईल नं.- 9926392190
Email: ashoksakhwar@gmail.com

शिक्षा व्यक्ति के जीवन में नितांत आवश्यक होती है। शिक्षा से किसी व्यक्ति में सोचने-समझने एवं अपनी संवेदनाओं, विचारों, भावनाओं आदि को प्रभावी तरीके से व्यक्त करने की क्षमता का विकास होता है। साथ ही, शिक्षा व्यक्ति के आंतरिक व्यक्तित्व को उभारने का काम करती है। आज इस निजीकरण और बाजारीकरण के दौर में लोग साक्षर तो बने हैं, लेकिन समझदार नहीं। संविधान में अंकित अनुच्छेद 21क कहता है, "राज्य 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा, जिसे की राज्य उचित रीति से विधि द्वारा अवधारित करे।"[1] भारत में प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य होने के कारण विद्यालयों में बच्चों की नामांकन-संख्या, उपस्थिति-दर और साक्षरता बढ़ी है। वहीं भारत में शैक्षणिक गुणवत्ता काफी चिंताजनक है। सरकार लोगों को आकड़ों में साक्षर दिखाने एवं संविधान में अंकित सभी को नि:शुल्क अनिवार्य शिक्षा की मजबूरी और वैश्विक स्तर पर साक्षरता के आकड़ों में अच्छा दिखाने का कार्य करती है। संविधान ने तो सभी को प्राथमिक स्तर पर शिक्षा का अधिकार देना सुनिश्चित किया है। ऐसा हो भी रहा है, लेकिन शिक्षा का स्तर बहुत ही बदहाली में है। सरकारी विद्यालयों का स्तर निरंतर गिरता जा रहा है। इस हालत के लिए सरकारें जिम्मेदार हैं जो गैर-सरकारी विद्यालयों को बढ़ावा दे रही हैं। गैर-सरकारी विद्यालयों की फीस इतनी ज्यादा होती है, जिसमें धनाढ्य लोगों के बच्चे

ही पढ़ सकते हैं। गरीब माता-पिता के बच्चे आर्थिक क्षमता के अभाव के कारण ऐसे विद्यालयों में पढ़ने के लिए अभिशप्त हैं, जिनका शैक्षणिक स्तर बदहाल है या सरकारी विद्यालयों में जिनकी स्थिति पहले से ही कमजोर है। ऐसा भी नहीं है कि गैर-सरकारी विद्यालयों के शिक्षक अधिक योग्य हैं, बल्कि सरकारी विद्यालयों में शिक्षक अधिक योग्य हैं। फिर भी शैक्षणिक स्तर में तुलनात्मक रूप से अंतर है। इसका कारण कोई प्रभावी नियंत्रण प्रणाली का न होना और सरकार के द्वारा गैर-सरकारी विद्यालयों को बढ़ावा देना है। देश में जब ब्रिटिश हुकूमत थी तब देश के नागरिकों ने अपने आपसी मतभेद भुलाकर सभी वर्गों और संप्रदाय की भेद की दीवार को गिराकर, लोगों ने बढ़चढ़ कर देश की आजादी में भाग लिया। जब भारत गुलामी की बेड़ियों से आजाद हो रहा था। सभी के अंतर्मन में उम्मीद की नई किरण के फूल पल्लवित हो रहे थे। लोगों ने उम्मीद जताई कि एक नए भारत का निर्माण होगा जिसमें सभी को समान अधिकार होगा, गरीबी-अमीरी का भेद कम होगा, जातिगतभेद और छुआछूत की व्यवस्था ख़त्म होगी, न्याय, स्वतंत्रता, समता, शिक्षा का अधिकार आदि सबको सुलभ होगा। शुरुआत में इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयास भी किये गए, कुछ परिणाम भी दिखाई देने लगे। कुछ समय बाद तथाकथित भेदभाव की संस्कृति में विश्वास करने वाले एवं इस संस्कृति से पोषित लोग सदियों से चली आ रही जन्म-आधारित और आर्थिक क्षमता से मिलने वाली विशेष सुविधायें न मिलने के कारण परेशान होने लगे। यदि सभी को संविधान की उद्देशिका में वर्णित अधिकार सामान रूप से मिलने, लगे तो हमारा क्या होगा, ऐसी मानसिकता सुविधा-भोगियों के मन में होने लगी। उनको चिंता होने लगी कि हमारे लिए मजदूरी कौन करेगा? हमें भी सभी के सामान कार्य करने पड़ेंगे और हमारा वर्चश्व ख़त्म हो जाएगा। इसीलिए इस भेदभावपूर्ण संस्कृति से पोषित तथाकथित कुछ लोग संविधान पर ही सवाल उठाने लगते हैं। जबकि डॉ. भीमराव आंबेडकर ने संविधान तैयार हो चुकने के बाद कहा था, "संविधान कितना भी अच्छा हो बुरा साबित हो सकता है और संविधान कितना भी बुरा हो अच्छा साबित हो सकता है, ये संवैधानिक पदों पर बैठे लोगों पर

निर्भर करता है।" सन् 2001 में सर्वशिक्षा अभियान के तहत उद्देश्य रखा गया है "सार्वभौमिक सुलभता एवं प्रतिधारण प्रारंभिक शिक्षा में बालक, बालिका एवं सामाजिक श्रेणी के अंतरों को दूर करने तथा अधिगम की गुणवत्ता में सुधार हेतु विविध अंत:क्षेपों में अन्य बातों के साथ-साथ नए स्कूल खोला जाना तथा वैकल्पिक स्कूली सुविधाएँ प्रदान करना।"[2] शिक्षा के लिए संवैधानिक अधिकार भी है और शैक्षिणिक स्तर सुधारने के लिए समय-समय पर नियम कानून भी बनते हैं लेकिन इनका प्रभावी तरीके से पालन नहीं होता। राजनीतिक और आर्थिक रूप से संपन्न लोग इस ओर ध्यान नहीं देते। उनके पास पर्याप्त धन होने के कारण अपने खुद के बच्चों के लिए अच्छे और सुविधाओं से लैस शैक्षणिक विद्यालयों में फीस चुकाने में कोई दिक्कत नहीं होती है। गैर-सरकारी शैक्षणिक संस्थान काफी अधिक और मनमानी फीस वसूलते हैं। जब कोई गरीब व्यक्ति इस समस्या से जूझता है, तब उसके मन में झटपटाहट होती है लेकिन जैसे ही वह किसी संवैधानिक पद पर आसीन होता है या आर्थिक रूप से मजबूत होता है, शैक्षणिक समस्या को भूल कर इसी स्थिति में वह अपने आप को गौरवान्वित महसूस करने लगता है। इसलिए गरीबों के बच्चे हमेशा गरीब ही बने रहते हैं। ये भी हम सब जानते हैं कि भारत में वे ही लोग सर्वाधिक गरीबी में जी रहे हैं, जिनका वर्षों से शोषण-दमन हुआ है। ऊपर से उन पर सामाजिक भेदभाव की मार, उन्हें भीतर तक कमजोर कर देती है। सभी को एक सामान, गुणवत्तापूर्ण अच्छे शिक्षा दिए बिना गरीबी-अमीरी की खाई से निजात पाना असंभव है। वह इसलिए क्योंकि शिक्षा व्यक्ति की पूरी जिन्दगी को प्रभावित करती है। उसके सोचने-समझने, व्यक्तित्व विकास, अपने हकों की जानकारी व मांग करने के तरीके, नौकरी व्यवसाय को चलाने, अपनी भावनाओं, विचारों, संवेदनाओं आदि को प्रभावी ढंग से व्यक्त करने में विशेष योगदान करती है। डॉ. भीमराव आंबेडकर ने कहा भी है, "शिक्षा वो शेरनी का दूध है जिसे जो पियेगा वह दहाडेगा।"

डॉ. भीमराव आंबेडकर ने वंचित, शोषित, पीड़ित, दलित, उपेक्षित, गरीब तबकों को प्रेरित करते हुए कहा था, "शिक्षित बनों! संघटित बनों! संघर्ष करों!" लेकिन

भीमराव आंबेडकर के इस सपने को आर्थिक रूप से मजबूत लोगों ने 'शेरनी के दूध' को ही कई स्तरों में विभाजित कर दिया है। जो जितना आर्थिक रूप से मजबूत है वह उस स्तर की शिक्षा प्राप्त कर सकेगा। इस स्थिति में कुछ ही लोग अपने आप को उभार कर आर्थिक रूप से मजबूत हो पाते हैं। जो सक्षम हो जाते है वो भी भूल जाते हैं कि उन्हें किन कठिनाइयों से गुजरना पडा था। राजनीतिज्ञों और आर्थिक रूप से मजबूत लोग इन मुद्दों पर ध्यान नहीं देते क्योंकि उन्हें इनसे प्रत्यक्ष रूप से कोई लाभ नहीं होती, बल्कि लोगों की अज्ञानता और पिछड़ेपन की इसी स्थिति से उनकी दुकाने चलती हैं और गरीबों को रोजी-रोटी की जुगाड़ करने से ही फुरसत नहीं मिलती, और इसपर वे तार्किक रूप से सोच-विचार नहीं कर पाते।

शिक्षा पर महात्मा गाँधी के विचार भी भारतीय सन्दर्भ में बहुत ही महत्वपूर्ण थे। उन्होंने ने कहा था, "शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है।"

शिक्षकों को राष्ट्र निर्माता माना जाता है। कमजोर शैक्षणिक स्तर के लिए वे लोग भी जिम्मेदार हैं जिन्हें इस कार्य का दायित्व मिला (शिक्षक) है, पर जिसे वे सही से निर्वहन नहीं कर रहें हैं। प्राय कई सरकारी विद्यालयों में अच्छी-खासी वेतन ले रहें शिक्षक विद्यालयों में मनमाने तरीके से जाते-आते हैं। इस व्यवस्था को नियंत्रित करने के लिए सरकार ने भी इस वैज्ञानिक युग में कोई प्रभावी प्रणाली नहीं बनाई हैं। सरकारों ने भी कोई कमी नहीं छोड़ी है, शिक्षकों के कई तरह के पद बना दिए हैं - गुरु जी, अतिथि विद्वान् , संविदा शिक्षक आदि लेकिन वेतन के नाम पर उन्हें नाममात्र का भुगतान करती है। इसमें भी कई स्तरों पर धांधली चलती है। कभी-कभी कई महीनों तक वेतन भी नहीं मिलता। मध्य प्रदेश के सरकारी संस्थानों में शिक्षकों के हजारों पद खाली पड़े हैं। सन् 2012 के बाद से शिक्षकों की भर्ती नहीं की गई है और अतिथि शिक्षकों से ही काम लिया जा रहा है। उन्हें भी शैक्षणिक सत्र के समय पर भर्ती नहीं किया जाता तथा कई महीनों तक कक्षाओं में शिक्षक उपलब्ध नहीं होते। साथ ही, प्रत्येक वर्ष उन्हें नए सिरे से आवेदन करना पड़ता है। इन

परिस्थितियों में शिक्षा का स्तर कैसे ठीक होगा? न्यूज़ चैनल एनडीटीवी के चर्चित पत्रकार रवीश कुमार के द्वारा 'प्राइम टाइम : शिक्षा का स्तर कैसे सुधरेगा?' को लेकर एक श्रृंखला चलाई गई थी, जिसमें शिक्षा से संबंधित कई मुद्दों को गंभीरता से उठाया गया। भारत में गैर-सरकारी विद्यालयों को बढ़ावा दिया जा रहा है, जिनमें आर्थिक स्थित के आधार पर माता-पिता अपने बच्चों को पढ़ा पा रहें है। इस व्यवस्था को रोकने के लिए सरकार के द्वारा कोई प्रभावी नियंत्रण प्रणाली भी नहीं है। सरकारी विद्यालयों के शैक्षणिक स्तर पर सरकार का ध्यान नहीं के बराबर है। सरकारी महकमों में बैठें धनाढ्य लोग इस पर ध्यान नहीं देते, उनका काम सिर्फ साक्षरता का आंकड़ा दिखाना भर होता है। आर्थिक क्षमता के आधार पर बेची जा रही शिक्षा के दौर में आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों के बच्चे कैसे पढेंगे? धनाढ्य लोगों के परिवारों के बच्चों के साथ प्रतियोगिता कैसे करेगें? एक बच्चा आर्थिक रूप से मजबूत परिवार का हो और शिक्षा प्राप्ति के सारे अवसर दिए जाए और एक बच्चा आर्थिक अभाव के कारण कमजोर शिक्षा लेने के लिए अभिशप्त हो, तब वह प्रतियोगिता में पहले ही पीछे रह जायेगा। आर्थिक रूप से कमजोर माता-पिता अधिक फीस देने में असमर्थ होंगे, इस दशा में अच्छे शैक्षणिक संस्थानों में उनके बच्चे पढ़ ही नहीं पाएंगे और पिछड़े ही रह जाएंगे। कहा भी गया है, "शिक्षा राष्ट्र के आर्थिक और सामाजिक विकास का शक्तिशाली साधन है, शिक्षा राष्ट्रीय संपन्नता एवं राष्ट्र कल्याण की कुँजी है।"[3] किसी भी देश में नागरिकों को रोटी, कपड़ा, मकान के बाद अगर मौलिक आवश्यकता होती है, तो वह है शिक्षा और स्वास्थ्य, लेकिन भारत में दोनों को ही गैर-सरकारी संस्थानों के हाथों में धीरे-धीरे देकर गरीब जनता को और गरीब तथा उत्पीड़ित बनाया जा रहा है। यदि सरकारी विद्यालयों के स्तर को सुधार कर ऐसा कोई कानून बनाया जाए जिसके तहत सभी को नि:शुल्क और एक ही प्रकार की शिक्षा प्रणाली से पढ़ने के लिए अनिवार्य किया जाए, चाहे वह व्यक्ति किसी भी आर्थिक वर्ग के परिवार, हैसियत और पद से सम्बन्ध रखता हो, तब जो शिक्षा व्यवस्था होगी, उसमें सभी आर्थिक वर्गों के व्यक्तियों को शिक्षा की गुणवत्ता बनाए रखने की चिंता

होगी। इस प्रकार से हम एक ऐसे शिक्षित भारत का निर्माण कर पाएंगे जिसमें सभी को एक सामान और अच्छी शिक्षा मिलने का सपना सबका साकार हो पायेगा।

---

[1] *भारतीय संविधान*, प्रकाशक सेन्ट्रल ला पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 2010

[2] स्कूल शिक्षा और साक्षरता विभाग वेबसाइट

[3] राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, 1964-66